सारांश

टी० बी० बोटोमोर ने उचित ही लिखा है कि भारतवर्ष में सामाजिक परिवर्तन लाने मे दो तत्त्वों ने महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया है : प्रथम—पाश्चात्य विज्ञान एव प्रौद्योगिकी, तथा दूसरा—सामाजिक नियोजन। विभिन्न अध्ययनों मे यह सिद्ध किया गया है कि प्रौद्योगिकी का प्रभाव सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिगत होता है। रहने की दशा मे सुधार तथा चिकित्सा सुविधा के द्वारा मृत्यु-दर मे कमी हुई है। अन्य शब्दो में कहा जा सकता है यह भारत की तीव्र जनसंख्या वृद्धि के लिए उत्तरदायी है। पूंजीवादी उद्योग व्यवस्था का प्रारम्भ सम्पत्ति-प्रणाली व श्रम-विभाजन मे परिवर्तन लाया है जिसने नये सामाजिक स्तरों तथा वर्गों को जन्म दिया है, जिन्होने भारत के राजनीतिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। औद्योगीकरण के प्रभाव से सयुक्त परिवार, सम्पत्ति की अवधारणा, कानून तथा जाति-प्रणाली सभी प्रभावित हुए हैं। प्रौद्योगिकी के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभावों ने बुद्धिवाद के माध्यम से उस परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रारम्भ किया है जिसके कारण लोगों का दृष्टिकोण परिवर्तित हो रहा है। बोटोमोर के शब्दों में, 'प्रौद्योगिकी अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सम्बन्धो, तथा प्रौद्योगिकीय और वैज्ञानिक विचार के धीमे रूपान्तरण के माध्यम से अप्रत्यक्ष परिवर्तन ही नही लायी जो कि इसका आधार था अपितु विश्व के बारे मे इसने नया दृष्टिकोण प्रदान किया जो कि परम्परागत संस्कृति के साथ सघर्ष मे आया। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश शासन ने भारत में सामाजिक तथा प्रौद्योगिकीय आविष्कारों को प्रारम्भ किया (सरकार प्रशासन, न्याय-प्रणाली, शिक्षा आदि) तथा बुद्धिवाद और बाद में समानतावाद एवं साम्यवाद जैसे नये सांस्कृतिक मूल्य प्रारम्भ किये।[1] भारतीय सामाजिक परिवर्तन के ये मूल कारण कहे जा सकते हैं। बोटोमोर के अनुसार 'सास्कृतिक विडम्बना' (भौतिक संस्कृति और अभौतिक सस्कृति के बीच की दूरी) की अवधारणा भारतवर्ष के लिए अधिक उचित है जिसके कारण परिवर्तन हो रहे हैं। आधुनिक पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के विकास से किन्ही ऐसे सामाजिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ जिसने भारतीय परम्परा को या तो अस्वीकार किया अथवा उसमें आधुनिकीकृत सुधार किये फिर भी भारतीय सामाजिक सस्थाएँ पूंजीवादी अथवा समाजवादी संस्थाओ के अनुकूल नही हो सकीं। जैसे संयुक्त परिवार आधुनिक समय मे न तो उपयोगी रहा और न ही आवश्यक। इसी प्रकार जाति-व्यवस्था मे गतिशीलता एव समानता की कमी उसके प्रजातन्त्रीय होने में बाधा है, यही कारण है कि जाति-प्रणाली राजनीतिक शासन, शिक्षा-प्रणाली तथा उद्योग की आवश्यकताओं से मेल नही खाती।। चूंकि जाति-प्रणाली तथा सयुक्त परिवार भारतीय सस्कृति के प्रमुख तत्त्व हैं अतः जैसे-जैसे वे कमजोर होते जाते हैं उनके साथ भूतकाल के सास्कृतिक मूल्य भी क्षीण हो रहे है। लौकिक हिन्दुत्व स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अभिनवीकरण तथा धर्मनिरपेक्षीकरण से प्रभावित हो रहा है जो औद्योगिक समाज के विकास से संलग्न है। बहुत से भारतीय शिक्षित युवक विवाह पर जातीय प्रतिबन्ध को नापसन्द करते हैं, माता-पिता द्वारा निर्णीत विवाह की आलोचना करते हैं तथा

[1] T. B. Bottomore, *Sociology*, 318–19.

परिवार के बुजुर्गों से अप्रसन्न दीखते हैं। फिर भी व्यवहार में साधारणतया वे आचरण के परम्परागत प्रकारों को पारिवारिक श्रद्धा एवं स्नेह से प्रभावित होकर तथा शायद इस अनिश्चितता से भी कि भिन्न मार्ग के अनुसरण करने का क्या परिणाम होगा, विशेषाधिकार प्राप्त समूह ऐसी नवीनताओं का प्रतिरोध करते हैं जो कि उनकी प्रतिष्ठा तथा आर्थिक लाभ को कम करती है। ये विभिन्न संघर्ष सामाजिक परिवर्तन के स्रोत हैं। नियोजन कार्यक्रम, जो 1951 में प्रारम्भ हुआ, के कारण इच्छित परिवर्तन सम्भव हो सका है। भारतीय संविधान (1950) समाज के सभी लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय देने के लिए कृतसंकल्प है। पब्लिक सर्विस कमीशन अब इन सैद्धान्तिक उद्देश्यों को व्यवहार रूप में परिणत कर रहा है। सामुदायिक विकास योजना के द्वारा गाँवों की स्थिति में सुधार किया जा रहा है ग्रामीण संरचना परिवर्तित हो रही है। डा० एम० सी० दुबे ने लिखा है कि यद्यपि ग्रामवासियों ने कार्यक्रम का विरोध इस आधार पर किया कि उसके कारण उनके सांस्कृतिक मूल्य प्रभावित होंगे फिर भी इस योजना ने ग्रामीण समुदायों में एक ऐसी मनोवृत्ति को अपनाने में मदद दी है जिसका प्रभाव दीर्घकालीन होगा।[1] लोग नवीनताओं को अपनाने में धीमे हैं तथा अत्यधिक सचेत रहते हैं फिर भी एक सीमित मात्रा में वे विभिन्न कार्यक्रमों को अपना भी रहे हैं। लोगों की आकांक्षाओं के स्तर में निःसन्देह परिवर्तन हो गया है तथा उनके और सरकार के बीच की दूरी धीरे-धीरे समाप्त होने के साथ ही पर्याप्त उन्नति की सम्भावना बढ़ सकती है।

बेटोमोर के शब्दों में, 'भारतवर्ष में सामाजिक परिवर्तन का विवरण आर्थिक परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण प्रभाव का संकेत देता है। उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप की भाँति आज के विश्व में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ही मुख्य रूप से समाज की संरचना तथा सांस्कृतिक आदर्शों को आकार प्रदान करती है। फिर भी प्रत्येक अवस्था में सामाजिक जीवन के विभिन्न तत्त्वों के बीच परस्पर सम्बन्ध होता है तथा कोई यह अन्दाज नहीं लगा सकता कि औद्योगिक समाजों का स्वरूप कैसा होगा। भारतवर्ष में अनेक प्रक्रियाएँ साथ-साथ घटित हो रही हैं। औद्योगिक विकास की स्वेच्छाजन्य योजनाएँ कार्यशील हैं तथा इसके साथ ही साथ कृषि-सम्बन्धी अर्थ-व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण योजना भी लागू है। इसके अतिरिक्त अनेक अवांछित परिवर्तन दिखाई देते हैं जो कि प्रत्यक्ष रूप में औद्योगीकरण तथा अभिनवीकरण से उत्पन्न होते हैं।[2] जैसा कि प्रो० एम० एन० श्रीनिवास ने कहा है, विकासशील देश (भारतवर्ष) आज प्राचीन और नवीन के बीच संघर्ष का रणस्थल है। पुरानी व्यवस्था अब न तो नई शक्तियों का सामना कर पाती है और न लोगों की नई आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा कर पाती है, पर वह मरणासन्न भी नहीं है। वास्तव में वह अभी तक बहुत जीवन्त है। यह संघर्ष बहुत से अशोभन विवाद, कलह, मतिभ्रम, और कभी-कभी रक्तपात को भी जन्म देता है। सन्तुलन और एकीकरण में उलझाव का परिणाम ही परिवर्तन है।